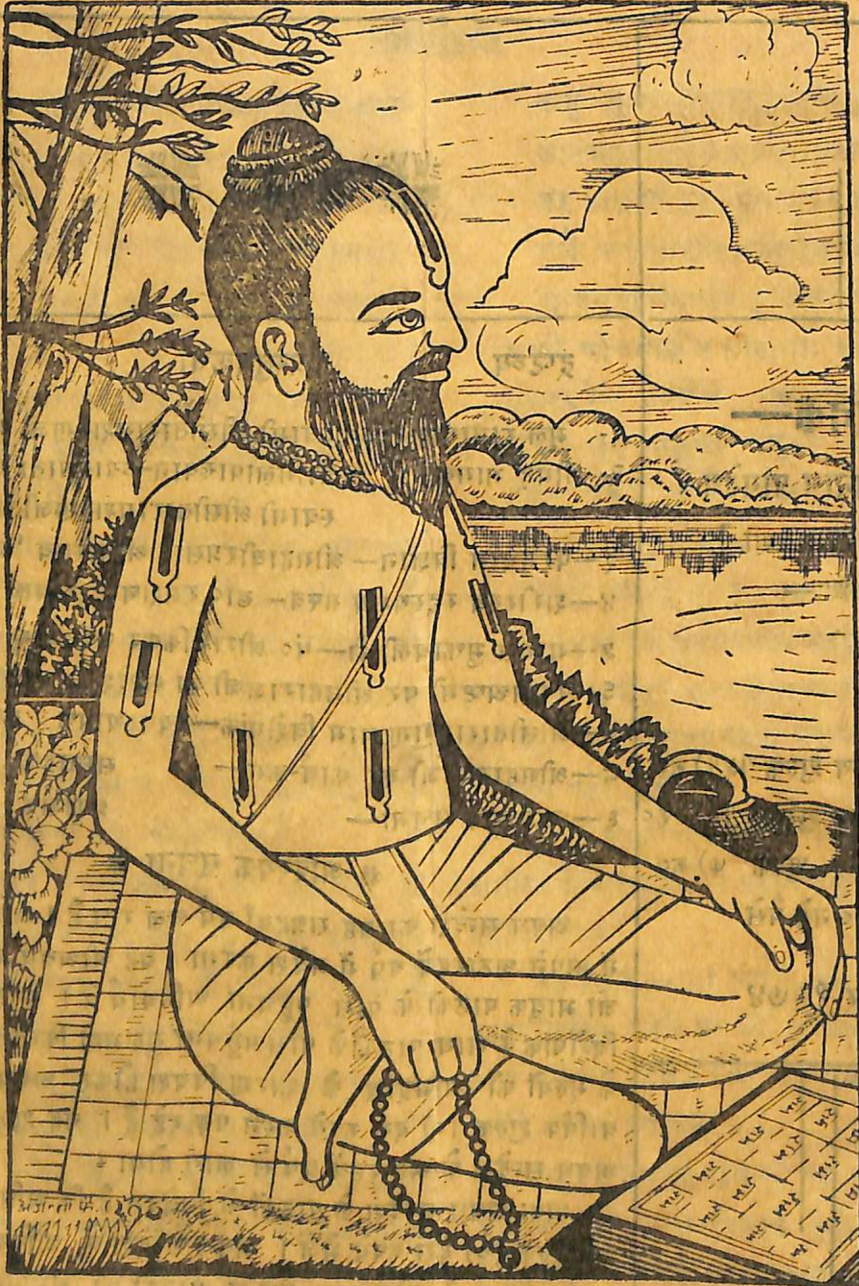
❀ अवध-सन्देश ❀



वर्ष १७ अङ्क—१०

❁ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❁

अनन्त श्रीविभूषित मधुररसाचार्य स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजी महाराज द्वारा संस्थापित आचार्यपीठ श्रीलक्ष्मणकिला के वर्तमान आचार्य स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज द्वारा संचालित।

सम्पादक—

पं० श्रीवैद्यनाथ पाण्डेय

[रामजी रामायणी]

—::❁::—

आजीवन सदस्य शुल्क १५१) रु०

प्रतिष्ठित संरक्षक शुल्क १०) रु०

संरक्षक शुल्क ७) रु०

एक प्रति का ७० नये पैसे

अक्टूबर १९७४

अनुक्रम

❁ आवश्यक सूचना ❁

अवध सन्देश का यह सत्रहवाँ वर्ष चल रहा है। अग्रिम जनवरी में अपने अठारहवें वर्ष में प्रवेश करेगा। यह श्रीअवध का सन्देश है जो भावुक पाठकों के पास पहुँचना अनिवार्य है। स्वल्प शुल्क में विशेषांक के साथ पाठकोंके पास पहुँचना सुलभहो किन्तु इधर कागज के मूल्यों की अभिवृद्धि के कारण विवश होकर अवध सन्देश का वार्षिक शुल्क १०) दस रुपये करने पड़ रहे हैं। यह शुल्क सन ७५ अवध सन्देश के अठारहवें वर्ष से लागू होगा।

अतः अवध सन्देश के पाठकों से निवेदन है कि अग्रिम सन ७५ का शुल्क १०) दस रुपये भेजें। अवध सन्देश के अधिक से अधिक प्रचार प्रसार में योग दान देने से पाठकों की श्री अवध के प्रति सेवा होगी।

— प्रकाशक

प्रकाशक रामप्रिया शरण श्रीवैष्णव के लिए मुद्रक—मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी।

—:: मूल रामायण ::—

स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज

(गतांक से आगे)



वे कहते थे हमलोग मेघके समान श्याम महाबाहु दृढ़व्रत स्थिर चित्त जगत् के शोक को नाश करने वाले श्रीरामचन्द्रजी को कब देखेंगे।

"मेघ श्यामं महाबाहुं स्थिरसत्त्वं दृढ़व्रतम।
कदा द्रक्ष्यामहे रामं जगतः शोक नाशनम ॥
(३। ८३। ८)

मेघ के समान श्याम महाबाहु दृढ़व्रती जगत् के शोक को नाश करने वाले श्रीरामजी का दर्शन हम सब कब करेंगे।

'मेघ श्यामम्'-मेघ के समान श्याम श्रीराघवेन्द्र का श्रीविग्रह है। प्रभु दूर में विराजमान हैं किन्तु अयोध्यावासी उनके सौन्दर्य माधुर्य को नहीं भूलते हैं। जिस प्रकार घाम से सन्तप्त मनुष्य को मेघ के दर्शन मात्र से ही शीतलता का अनुभव होने लगता है फिर बरसते हुए मेघ का दर्शन कितना सुखद होगा यह वर्णनातीत है।

'महाबाहुम्'—श्रीराघवेन्द्र की भुजाओं की शोभा का वर्णन श्रीरामायण में स्थल-स्थल पर है किन्तु किष्किन्धा काण्ड में श्रीहनुमान् जी के द्वारा जो वर्णन है वह अत्यन्त मनोरम है।

"आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः।
सर्वभूषणभूषार्हा किमर्थं न विभूषिताः ॥"

इस श्लोक में जो भुजाओं का वर्णन है वह लोकोत्तर है तथा समुद्र के तटपर जब प्रभु अपनी भुजाओं को अपने शिर के नीचे रखकर शयन कर रहे थे उस समय महर्षि ने उनकी शोभा का वर्णन कया है वह और भी लोकोत्तर है महर्षि कहते हैं—

बाहुं भुजगभोगाभमुपधारिंसूदनः।
जातरुपमयैश्चैव भूषणैर्भूषितं पुरा ॥
वर काञ्चनकेयूर मुक्ताप्रवर भूषणैः।
भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा ॥
चन्दनागरुभिश्चैव पुरस्तादधिवासितम ॥
शयने चोत्तमाङ्गेन सीतायाः शोभितं पुरा।
तक्षकस्येव सम्भोगं गङ्गाजलनिषेवितम् ॥
संयुगे युग सङ्काशं शत्रूणां शोकवर्धनम्।
सुहृदानन्दनं दीर्घं सागरान्तव्यपाश्रयम् ॥
अस्यता च पुनः सव्यं ज्याघातविगतत्वचम्।
दक्षिणो दक्षिणं बाहुं महापरिघसन्निभम् ॥
गो सहस्र प्रदातारमुपधाय महद्भुजम् ॥६।२१

"महाबाहु" शब्द से भगवत्सौन्दर्य के अनुभव करने की योग्यता स्वयं प्रदान करते हैं-ऐसी उदारता कही गयी है।

"स्थिर सत्व"-का अर्थ है स्थिर चित्त। अर्थात् आश्रित के प्रतिकूल होने परभी प्रभुके मनमें विकार नहीं आता।

"दृढ़ व्रतम्"—का अर्थ है अन्तरङ्ग पार्षदों के द्वारा विरोध करने पर भी आश्रितों की रक्षा के लिए कटिबद्ध रहते हैं। श्री विभीषण शरणागति में कहेंगे "एतद् व्रतं मम"।

"कदा द्रक्ष्यामहे रामम्"—का तात्पर्य है कि श्रीराघवेन्द्रके मुखारविन्दके दर्शन करते ही श्री-कैकेयीजीके वचनोंसे उत्पन्न सभीताप मिट जायेंगे।

'जगतः शोक नाशनम्'—का भाव है कि जब प्रभु संसार के समस्त प्राणियों के शोक दूर करने

में समर्थ हैं तब हम अयोध्यावासी शोकयुक्त कैसे रह सकते हैं। प्रभुके सर्व लोक शोक निवर्तक होने के कारण हमारे शोकसे क्या सम्बन्ध है। अर्थात् हमारे शोक अनायासही निवृत्त हो जायेंगे गीतामें-
'सर्व धर्मान् परित्यज्य इत्युक्तवतोप्यस्यातिशय उक्तः'

इस श्लोक में भगवान् ने 'मा शुचः' कहकर जो अर्जुन का शोक निवृत्त किया था, उससे भी इस श्लोक का अधिक महत्व है ऐसा श्रीगोविन्दराज कहते हैं क्योंकि गीता में प्रभु के वचन द्वारा शोक की निवृत्ति कही गयी है यहाँ दर्शनमात्र से ही सम्पूर्ण जगत् के शोक दूर करने वाले प्रभु को आश्रितों के शोक को दूर करने में वचन द्वारा उपदेश की आवश्यकता नहीं है यही इसका तात्पर्य हुआ।

आगे कहते हैं—जिसप्रकार सूर्यके उदय होते ही सम्पूर्ण लोक के अन्धकार मिट जाते हैं उसी प्रकार श्रीराघवके दूरसे दर्शन करतेही हमारे शोक नष्ट हो जायेगें—

दृष्ट एव हि नः शोकमपनेष्यति राघवः।
तमः सर्वस्य लोकस्य समुद्यन्निव भास्करः॥

श्रीगोविन्दराज कहते हैं—दर्शन होते ही प्रभु मन्दहास नहीं भी प्रकट करें एवं कटाक्षपूर्वक कोई प्रिय वचन नहीं भी बोलें तो भी हमलोगों को कोई यत्न नहीं करना चाहिए किन्तु दूरसे दर्शनमात्र से ही हमारे सभी शोक मिटही जायेंगे जैसे सूर्य के उदय होनेपर दूरसे ही सभी अन्धकार निवृत्त हो जाते हैं।

इस प्रकार सभी अयोध्यावासी प्रसन्न होकर श्रीराघवेन्द्र की शुभ कथाएँ करते हुए मार्ग में चल रहे हैं।

इत्येवं कथयन्तस्ते संप्रहृष्टाः कथा शुभाः।
परिष्वजानाश्चान्योन्यं ययुर्नागरिका जनाः॥
(वा० २।८३।१०)

"सजगाम वनं वीरो राम पाद प्रसादकः"

इस श्लोक की व्याख्या की गई। श्लोकमें पठित पदों का भाव इस प्रकार है। श्रीभरतलालजी को वीर कहा गया है। राग, द्वेष, आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के कारण ही श्रीभरतजी को वीर कहा गया है। "राम पाद प्रसादकः" में इस पद में 'पाद' शब्द पूज्य वाचक है। अर्थात् पूज्य श्रीराघवेन्द्र को प्रसन्न करने के लिए श्रीभरतजी वन गये। श्रीराघवेन्द्र के चरणारविन्द को प्रसन्न करने गये ऐसा भाव शेषभूत श्रीभरतजी के अनुरूप है। यद्यपि श्रीराघवेन्द्र का पूर्ण अनुग्रह श्रीभरतजी को प्राप्त है। इनसे श्रीराघवेन्द्र कभी भी रुष्ट नहीं हुए। ऐसी दशा में श्रीभरतजी को राज्य दिया गया। इस बुद्धि को परिवर्तन के लिए ही वन में गये॥ ३३॥

गत्वा तु समहात्मानं रामं सत्य पराक्रमम्।
अयाचद् भ्रातरं रामगार्यं भावपुरस्कृतः॥३४॥
त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत्॥

सत्य पराक्रमी स्वाभाविक प्रसन्न हृदय श्रीभरतजी ने श्रीराघवेन्द्र के पास पहुँचकर अत्यन्त विनय भाव से अपने भ्राता श्रीराघवेन्द्रसे प्रार्थना की कि—हे श्रीराघवेन्द्र! आप धर्मज्ञ हैं अर्थात् बड़े भ्राता के सामने छोटा भ्राता राज्य का अधिकारी नहीं हो सकता। धर्मशास्त्र के इस आदेश को आप भली-भांति जानते हैं। अतएव आपही राजा होने योग्य हैं।

श्रीभरद्वाजजी की आज्ञा से श्रीचित्रकूट पहुँचकर अपनी सेना को प्रभु के आश्रम से दूर ही ठहराकर प्रभु के दर्शनार्थ आश्रम की ओर श्रीभरतजी श्रीशत्रुघ्नजी के साथ चले। श्रीभरतजी ने देखा कि आश्रम के परिचय के लिए श्रीलक्ष्मणकुमार ने कहीं-कहीं वृक्षों में कुश और चीर बाँधकर चिन्ह बना दिये हैं।

श्रीभरतजी ने अपने मन्त्रियों एवं श्रीशत्रुघ्नजी से कहा। जान पड़ता है हम लोग उस स्थान पर पहुँच गये जिसे श्रीभरद्वाजजी ने बतलाया था। यहां से मन्दाकिनी नदी भी सामने है। श्रीलक्ष्मण-कुमार ने यहां इतनी ऊँचाई पर चीरों को बाँध रखा है वह इसलिए कि रात्रि आदि में जब श्री-लक्ष्मणकुमार को जल लाने के लिए जाना पड़ता होगा, तब इन चीर चिन्हों को देखकर वे बिना इधर-उधर भटके आश्रम में आ जाते होंगे। प्रभु के आश्रम के समीप पहुँचकर उन्होंने धनुषबाण एवं अन्य अस्त्र-शस्त्रों को लटकते हुए देखा। तद-नन्तर उन्होंने पर्णशाला में बैठे हुए जटा जूट धारण किए हुए श्रीरामभद्र को देखा। प्रभु मुनियों के वस्त्र धारण किए हुए थे।

श्रीराघवेन्द्र को देखते ही भरतजी उनकी ओर दौड़ पड़े। वे प्रभु के चरणों में गिरना चाहते थे किन्तु बीच में ही मुर्छित होकर गिर पड़े। श्री-भरतजी केवल एक बार 'आर्य' शब्द का उच्चा-रण कर और कुछ नहीं बोल सके। श्रीराघवेन्द्र ने भरतजी एवं शत्रुघ्नजी को हृदय से लगा लिया। जटा-जूट धारण किए अत्यन्त दुर्बल श्रीभरतजी को प्रभु ने बड़ी कठिनाई से पहचाना। उन्हें दोनों हाथों से पकड़कर उठाया। श्रीराघवेन्द्र ने उनके मस्तक को सूंघकर अपने हृदय से लगा लिया। अपने अङ्क (गोदी) में बैठाकर उनसे कुशल समाचार पूछने लगे—हे तात ! तुम्हारे पिता कहां हैं ? तुम इस वन में किसलिए आये हो ? महाराज सहसा लोकान्तर में तो नहीं चले गये ? तुम अभी बालक हो इसलिए सनातन राज्य में कोई अन्य-अव्यवस्था तो नहीं होगयी? राजसूय अश्वमेध आदि यज्ञों के करने वाले धर्मात्मा सत्य प्रतिज्ञ महाराज स्वस्थ तो हैं ? इक्ष्वाकु कुल के उपाध्याय ब्राह्मणों का ठीक-ठीक सत्कार किया जाता है ? माता श्री-कौशल्या, श्रीसुमित्रा एवं परम श्रेष्ठा देवी कैकेयी आनन्द से तो हैं ? हमारे सखा श्रीवशिष्ठजी के पुत्र का सत्कार तो तुम करते हो न ? हवन काल उपस्थित होने पर पुरोहित तुमको सूचना देते हैं या नहीं ? देवता, पितर, माता, गुरु, पूज्य, वृद्ध, वैद्य एवं ब्राह्मणों का सत्कार करते हो या नहीं ?

हे तात ! अस्त्र-शस्त्र सम्पन्न, नीति शास्त्र विशारद सुधन्वा नाम के धनुर्वेद वेदाचार्य का सत्कार तुम करते हो या नहीं ?

नीतिशास्त्रज्ञ, निर्लोभ; विश्वसनीय एवं कुलीन लोगों को तुमने अपना मंत्री बनाया या नहीं ? क्योंकि योग्य मन्त्रियों द्वारा रक्षित गुप्त परामर्श ही राजाओं के लिए विजय का मूल है। तुम निद्रा के वश में तो नहीं रहते ? यथा समय जाग तो जाते हो ? तुम पिछली रात में अर्थ की प्राप्ति पर विचार करते हो ? अकेले किसी विषय पर विचार तो नहीं करते अथवा बहुत लोगों के साथ बैठकर तो परामर्श नहीं लेते ? तुम्हारे विचार कार्यरूप में परिणत होने से पूर्व ही अन्य राजाओं को विदित तो नहीं हो जाता ? अल्प प्रयास से सिद्ध होने वाले तथा बड़े फल देने वाले कार्य को करने का निश्चय कर उसे पूरा करने में देर तो नहीं लगाते ? मन्त्रियों के साथ किया हुआ तुम्हारा गुप्त परामर्श तर्क या अनुमान से दूसरे लोग जान तो नहीं लेते ? तुम हजार मूर्खों को त्याग कर एक पण्डित सलाहकार का आश्रय ग्रहण करते हो या नहीं ? क्योंकि यदि संकट के समय एक भी पण्डित पास हो तो बड़े ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जाती है।

राजा भले ही हजार या दश हजार मुर्खों को अपने पास रखे, परन्तु राजा को उन मुर्खोंसे कुछ

भी सहायता नहीं मिल सकती, किन्तु एकभी बुद्धिमान् मन्त्री हो तो राजाको बहुत बड़ी लक्ष्मी प्राप्त करा देता है। हे तात ! तुम उत्तम जातिके नौकरों को उत्तम कार्य में, मध्यम जाति के नौकरों को मध्यम कार्य में एवं छोटे जाति के नौकरों को छोटे कार्यमें लगाते हो न ? तुम्हारे राज्यमें उग्र दण्डसे उत्तेजित प्रजा कहीं तुम्हारा या तुम्हारे मन्त्रियों का अपमान तो नहीं करती ? जिस प्रकार स्त्रियाँ परस्त्री गमन करने वाले पुरुष को पतित समझ उसका अनादर करती है तथा यज्ञ करनेवाले यज्ञ कर्मसे पतित का अनादर करते हैं, उसी प्रकार कहीं अधिक कर लेने से प्रजा तुम्हारा अनादर तो नहीं करती है। जो राजा विशेष धनके लालच में फँसे हुए कूटनीति विशारद पुरुषको, सज्जनों में दोष लगाने वाले नौकर को तथा निर्भय होकर राजा तकको मार डालनेवाले पुरुषको नहीं मार डालता वह स्वयं मारा जाता है। तुम ऐसे लोगोंको तो अपने पास नहीं रखते ?

हे भरत ! जो व्यवहारमें चतुर, शत्रुको जीतने वाला, सैनिक कार्यों में चतुर, विपत्ति के समय धीर, स्वामी का विश्वासपात्र, उच्चकुल में उत्पन्न हो ऐसे व्यक्ति को तुमने अपना सेनापति बनाया है या नहीं ? अत्यन्त बलवान, युद्धविद्या में निपुण, और जिनके बलकी परीक्षा ली जा चुकी है ऐसे पुरुषों को पुरस्कृतकर तुमने उत्साहित किया है या नहीं ? तुम सेनाके लोगोंको कार्यके अनुरूप भोजन और वेतन यथा समय देनेमें विलम्ब तो नहीं करते ? क्योंकि भोजन और वेतन समय पर न मिलने से सेवक लोग कुपित होते हैं और स्वामी की निन्दा करते हैं। सेवकों का यह कार्य अनर्थकारी सिद्ध हो सकता है। सभी राजपूत सरदार लोग तुम्हारे प्रति अनुराग रखते हैं क्या ? तुम्हारे लिए समय पड़ने पर वे अपने प्राणोंका न्यौछावर करनेके लिए तैयार रहते हैं ?

हे तात ! अपने ही राज्य के रहने वाले दूसरे के अभिप्राय को जानने वाले समर्थ प्रत्युत्पन्नमति (हाजिर जवाब) यथोक्तवादी तथा दूसरे की बातों को तर्क से खण्डन करनेवाले पुरुषोंको तुमने अपना दूत बनाया है कि नहीं ? अन्य राज्यों के अठारह पदाधिकारी तथा अपने राज्य के मन्त्री, पुरोहित, युवराज — ये तीन को छोड़ शेष पन्द्रह राज्य-अधिकारियों के समाचार जानने के लिए प्रत्येक के पास तीन-तीन ऐसे गुप्तचर जो आपस में एक दूसरेको नहीं जानते हों, नियुक्त कर इन सबकी गतिविधियों का समाचार जानते रहते हो या नहीं ?

शास्त्रों में अठारह पदाधिकारियों का वर्णन इस प्रकार है—

१- मन्त्री, २- पुरोहित, ३- युवराज, ४ सेनापति, ५- द्वारपाल, ६- अन्तःपुर के अधिकारी, ७- कारावासके अधिकारी, ८ कोषाध्यक्ष, ९–राजा की आज्ञानुसार सेवकों को आज्ञा देने वाला, १० वकील, ११- धर्माध्यक्ष, १२- सेना को वेतन बाँटने वाला, १३- ठीकेदार, १४ नगराध्यक्ष, १५- सीमान्त का अधिकारी, १६- दुष्टों को दण्ड देने वाला, (मजिस्ट्रेट), १७- जल, पर्वत तथा धन का रक्षक, १८- दुर्गों का रक्षक।

इनमें से मन्त्री, पुरोहित एवं युवराज को छोड़कर अपने राज्यके भी शेष पन्द्रह अधिकारियों की गतिविधि गुप्तचर के द्वारा जाननी चाहिए। हे रिपुशूदन ! जिन शत्रुओं को तुमने अपने राज्य से निकाल दिया था, पुनः वे किसी तरह लौटकर आ गए हैं, उनको दुर्बल समझकर उनकी ओर से कहीं असावधान तो नहीं रहते हो ? २।१००।१-३७

कच्चिन्न लौकायतिकान् ब्राह्मणांस्तात सेवसे ।
अनर्थ कुशला ह्येते बालाः पण्डित मानिनः ॥
धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुधाः ।
बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्ति ते ॥
॥ वा० २ । १०० । ३८-१० ॥

हे तात ! तुम कहीं नास्तिक ब्राह्मणों को तो अपने पास नहीं रखते ? क्योंकि ये लोग अपने को बड़ा पण्डित समझते हैं । किन्तु वास्तव में शास्त्रों के तात्पर्य नहीं समझने के कारण अनभिज्ञ हैं । यथार्थ ज्ञान उनको नहीं होसकता । धर्मानुष्ठानसे लोगों का चित्त हटाकर उनको नरक भेजने में ये बड़े कुशल होते हैं । केवल प्रत्यक्ष प्रमाण में ही जिनका विश्वास है, उनको लोकायतिक (नास्तिक) कहते हैं ।

'लोकेषु—आयतं विस्तृतं लोकायतम'

अथवा लोकायत शब्द का प्रत्यक्ष एवं अनुमान अर्थ है—

यद्वा लोकायत शब्दाभ्यां प्रत्यक्षमनुमानं चोच्यते । लोक्यते साक्षात्क्रियतेऽनेनेति लोकः प्रत्यक्ष प्रमाणम्, आ समन्ताद्व्याप्य धूमादि समीपवर्ती वह्न्यादिर्यत्यते गृह्यतेऽनेनेति आयतमनुमानं तदेषामस्तीति लोकायतिकाः ॥

'लोक' का अर्थ है प्रत्यक्ष प्रमाण तथा 'यत' का अर्थ है अनुमान प्राचीन परम्परा के अनुसार शब्द प्रमाण (वेद प्रमाण) सर्वश्रेष्ठ माना गया है । वेद के अनुकूल अनुमान प्रमाण है वेद विरुद्ध नहीं । प्रत्यक्ष प्रमाण अत्यन्त दुर्बल प्रमाण है । अत्यन्त समीप से अपने ही आँखों में पड़े कीट पतंग को नहीं देख पाते, साथ ही पर्वत शिखरों, वायुयानों से नीचे की वस्तुओं को सही सही प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं देख सकते । अपने ही कमरे के बगल में दीवाल की ओट में किसी वस्तु का दर्शन प्रत्यक्ष प्रमाण से सम्भव नहीं है । नेत्र आदि इन्द्रियों में दोष होने पर भी किसी वस्तु का दर्शन नहीं होता ।

इस प्रकार दार्शनिकों ने प्रत्यक्ष प्रमाण में अनेक दोष बतलाये हैं । प्रत्यक्ष प्रमाणके सहायता से ही अनुमान होता है, इसलिए अनुमान भी स्वतन्त्ररूप से प्रमाण नहीं बन सकता । जब कोई पुरुष पाकशाला (रसोई घर) में अग्नि के साथ धूम का दर्शन करता है, तभी वह पर्वत में धूम को देखकर वहाँ वह्नि (आग) का अनुमान करता है— 'पर्वतो वह्नि् मान् धूमात्'

'शास्त्रयोनित्वात्' ब्रह्मसूत्र के इस चतुर्थ सूत्र के द्वारा वेद व्यास जी ने सभी प्रमाणों को ठीक-ठीक विवेचन करते हुए शास्त्र को ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना है ।

'चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः ।'

जैमिनि के इस सूत्र की व्याख्या करते हुए श्रीशबर स्वामी जी ने इन्द्रियातीत सूक्ष्म तत्व के विवेचन में शास्त्र को ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना है । गीता में भी भगवान् ने कहा है—

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ ।

गोस्वामीजी ने श्रीराघवेन्द्र को एक मात्र वेदान्त से ही जानने योग कहा है—

'वेदान्त वेद्यं विभुम्'

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी ।
मत हमार अस सुनहु सयानी ॥

वेदावतार श्रीमद्वाल्मीकि रामायण है ।

अतः इस प्रसङ्ग में प्रमाणों का ठीक-ठीक विवेचन करते हुए महर्षि ने शास्त्र को ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण कहा है । श्रीराघवेन्द्र श्रीभरतजी से कहते हैं कि वेद विरोधी नास्तिक, बौद्ध, चार्वाक आदि लोगों का संसर्ग नहीं करना चाहिये । ये लोग

स्वयं तो धर्म, सदाचार, भगवद्भक्ति से विमुख रहते ही हैं, साथही हजारों लोगोंको धर्म, ईश्वर से विमुखकर नरकों में भेजते रहते हैं।

आगे के श्लोक में कहते हैं—हे भरत! मुख्य प्रामाणिक धर्मशास्त्रों के विद्यमान रहते हुए भी उनकी बुद्धि सदा वेद विरुद्ध तर्कोंकी ही ओर दौड़ा करती है एवं शुष्क तर्क वितर्क करने का अभ्यास पड़ जाने के कारण वे सदा अनर्थकारक वचन बोला करते हैं।

वेद मार्गसे विपरीत इनकी बुद्धि रहती है। सात्विक महर्षियोंद्वारा प्रणीत, सात्विक पुराणादि का सज्जनगण आदर करते हैं, किन्तु ये वेद शास्त्र विरोधी लोग शुष्क तर्क-वितर्क के द्वारा इन शास्त्रों को निरर्थक बतलाते रहते हैं। ऋषियों द्वारा किए गये धर्मोपदेश को वेदशास्त्र के अनुकूल तर्क के द्वारा जो चिन्तन करता है, धर्मका वास्तविक स्वरूप वही जानता है—

आर्षधर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

इस प्रकार वेद-शास्त्र विरोधी, नास्तिक दुर्बुद्धियों से सदा दूर रहना ही उचित है। भलेही ये लोग ऊँचे पदाधिकारी क्यों न हों।

हे तात! तुम उस अयोध्याकी तो भलीभांति रक्षा करते हो, जो हमारे पिता पितामहादि वीर पुरुषों के द्वारा सदा पालित रही है। अपने नामको ठीक-ठीक चरितार्थ करने वाली, दृढ़ द्वारों वाली, हाथियों, घोड़ों एवं रथों से भरी हुई, वर्णानुरुप धर्मकार्यों में सदा तत्पर रहने वाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों से युक्त जितेन्द्रिय महा-उत्साही सदस्यों आर्यजनों से सुशोभित विविध प्रकार के भवनोंसे पूर्ण, विद्वज्जनों से भरी हुई तथा जो उत्तरोत्तर उन्नत अवस्था को प्राप्त होरही है।

हे राघव! जिस देशमें अनेक यज्ञानुष्ठान हो चुके हैं, जहाँ सुप्रतिष्ठित लोग रहते हैं, जो अनेक देवालयों, पौशालों और सरोवरों से शोभित है, जो हर्षित स्त्री-पुरुषोंसे एवं सामाजिक उत्सवों से शोभायमान है। जहाँपर तिल बराबर जमीन भी बिना जुती नहीं है। जहाँपर हाथी, घोड़े, गाय, बैल आदि पशु भरे पड़े हैं। जहाँ ईतिका भय नहीं है, जहाँ के लोग केवल मेघके जलपर निर्भर नहीं रहते हैं अर्थात् सरयूके तटवर्ती देश होनेके कारण सिंचाई के साधनों से परिपूर्ण है। हिंसक पशुओं से एवं चोर आदि भयों से रहित है। नाना खानों से शोभित है। जहाँ एकभी पापीजन नहीं हैं। वह देश सुखी तो है? जो लोग खेतीकर, पशुओं का पालनकर अपना निर्वाह करते हैं, उनपर तुम प्रसन्न रहते हो? तुम उनलोगों को उनकी इष्ट-वस्तु देकर, उनके विघ्नों को दूरकर, उनका भरण-पोषणतो करतेहो? तुम स्त्रियोंको प्रसन्न रखतेहो? उनकी रक्षा करते हो या नहीं? उनका विश्वास तो नहीं करलेते? उनको अपने गुप्त भेद तो नहीं बतलादेते हो? जिन बनों में हाथी रहते हैं उसकी रक्षा करते हो? जो हथिनियाँ हाथियों को पकड़वाती हैं, उनका पालन-पोषण करते हो। हाथियों हथिनियों एवं घोड़ों के लाभ से तृप्त तो नहीं होते हो। हे राजपुत्र! तुम अपनेको सभी प्रकारसे भूषित कर मध्यान्ह से पूर्व सभामें जाकर राजाओं से मिलते हो या नहीं? जो लोग तुम्हारे काम करने वाले हैं, वे निर्भय होकर तुम्हारे समीप तो नहीं चले आते हैं? अथवा भयसे दूरतो नहीं रहते? क्योंकि ये दोनों ही बातें लाभप्रद नहीं है अतः काम करने वालों के साथ मध्यम व्यवहार करना ही उचित है।

हे राघव! तुम्हारे कोष में आय स्वल्प एवं

व्यय अधिक तो नहीं है। तुम्हारे कोषका धन नाचने गाने वालों को तो नहीं ? लुटाया जाता ? देवता, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योद्धा एवं मित्रगण के लिये तुम्हारे कोष का धन व्यय किया जाता है या नहीं ? जब अच्छे चरित्रवाले साधुलोग, जो झूठे चोरी आदि अपवादों से दूषित हो विचारके लिए न्यायालय में उपस्थित किये जाते हैं, तब तुम्हारे सरकारी वकील उनसे जिरहकर सत्य असत्य का निर्णय किये बिनाही लालचमें फँसकर उनको दण्ड तो नहीं दे देते हैं

हे पुरुषश्रेष्ठ ! चोरी करते समय पकड़ा गया चोर घूस के लालच से छोड़ तो नहीं दिया जाता। धनी एवं गरीब के बीच में झगड़ा होनेपर लोभ रहित होकर तुम्हारे सचिव दोनों का मुकदमा न्याय पूर्वक सुलझाते हैं, या नहीं।

हे राघव ! झूठे दोषारोपण से दण्डित लोगों के नेत्रों से गिरे हुए अश्रुजल राजाके धन-जनका नाशकर डालते हैं। हे राघव ! तुम वृद्धों-बालको वैद्यों एवं मुखिया लोगों को उनकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करके, उनके साथ स्नेह पूर्वक व्यवहार करके एवं उनसे आश्वासन सूचक वचन कहकर प्रसन्न तो रहते हो ? गुरुओं, वृद्धों, तपस्वियों, देवताओं, अतिथियों, चौराहे के बड़े वृक्षों एवं ब्राह्मणों को तुम श्रद्धा पूर्वक प्रणाम करते हो या नहीं ?

तुम यथा समय धर्म-अर्थ का उपार्जन करते हो या नहीं ? विषय वासना में फँस करके, धर्म-एवं अर्थ के उपार्जन से वंचित तो नहीं रह जाते ? अर्थात् धर्म-अर्थ एवं काम का समय-समय पर सेवन करते हो या नहीं ? तुम्हारे पुरजन एवं धर्मशास्त्र के ज्ञाता पण्डित तुम्हारे सुख के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं या नहीं ?

हे भरत ! नास्तिकता; असत्य भाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियों से न मिलना, आलस्य इन्द्रियों की परवशता, मन्त्रियों की अवहेलना कर स्वयं अकेले ही राज्य की समस्याओं पर विचार करना, विपरीत बात सुझानेवालों, अशुभ चिंतकों से परमर्श करना, निश्चित किये हुए कार्यों का आरम्भ न करना, परमर्श को गुप्त नहीं रखना, मंगल कार्यों का परित्याग करना, नीच ऊँच सभी को देखकर उठ खड़े होना, चारों ओर युद्ध करते फिरना—राजा के इन चौदह दोषों को तुमने परित्याग कर दिया है न ? २ । १०० । ४० ६७ ॥

दश पञ्च चतुर्वर्गान् सप्तवर्गं च तत्त्वतः ।
अष्टवर्गं त्रिवर्गं च विद्यास्तिस्रश्च राघव ॥
॥ २ । १०० । ६८ ॥

इन्द्रियाणां जयं बुदध्वा षड्गुण्यं दैवमानुषम् ।
कृत्यं विंशति वर्गं च तथा प्रकृति मण्डलम् ॥
॥ वा० २ । १०० । ६६ ॥

हे राघव ! मृगया, द्यूत, दिवस का शयन, पर निन्दा स्त्री मद, नृत्य, गीत, वाद्य, जहाँ तहाँ व्यर्थ का घूमना इन दश काम से उत्पन्न दोषों को जल सम्बन्धी, पर्वत, वृक्ष, ऊसर भूमि तथा निर्जन देश सम्बन्धी इन पाँच प्रकार के दुर्गों को शाम, दाम, दण्ड, भेद इन चार नीतियों को एवं स्वामी, मन्त्री, राष्ट्र, दूर्ग, कोष, सेना, मित्र—इन सात अङ्गों को तुम भली-भाँति जानते हो ? अर्थात् इन पर ठीक-ठीक विचार करते हो या नहीं ? इनमें से ग्राह्य गुणों का ग्रहण करना त्याज्य दुर्गुणों का परित्याग करना ठीक-ठीक समझते हो या नहीं ? चुगली दुस्साहस; द्रोह, ईर्ष्या, गुणों में दोष दर्शन, अर्थ में दोषारोपण, कठोर वचन कठोर दण्ड, दान क्रोध से उत्पन्न इन आठ दोषों को धर्म, अर्थ, काम—इन तीन विद्याओं को सन्धि, विग्रह,

आक्रमण, समय की प्रतीक्षा, शत्रुओं में फूट डालना एवं किसी बली को अपना सहायक बनाना—इन छः गुणों को अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष महामारी, इन पाँच प्रकार के दैवी विपत्तियों को तुम भली-भाँति जानते हो? अधिकारियों से, चोरों से, शत्रुओं से, राजा के कृपा पात्रों से तथा राजा के लोभ से उत्पन्न हुई विपत्तियों को तुम भली-भाँति जानते हो? अर्थात् उनपर ठीक-ठीक विचार करते हो या नहीं? बालक, वृद्ध, दीर्घकालीन रोगी, जाति बहिष्कृत, डरपोक, दूसरों को भय भीत करने वाला, लोभी, लोभी का सम्बन्धी प्रजा का विरक्त भाजन, इन्द्रियाशक्त, बहुत लोगों के साथ परमर्श करने वाला, देव-ब्राह्मण निन्दक, भाग्यहीन, भाग्यपर निर्भर रहने वाला, अकाल पीड़ित, विदेश में दीन-हीन बनकर घूमने वाला, बहुत-शत्रुओंवाला, यथासमय काम न करनेवाला, सत्य धर्म पर तत्पर न रहने वाला, सेना द्वारा पीड़ित—इन बीसों को राज्य, स्त्री,' स्थान, देश, जाति और, धन जिनके छीन लिये गये हों ऐसे प्रकृति मण्डल को, शत्रु-मित्र आदि राज मण्डल को तुम भली-भाँति जानते हो? अर्थात् इन पर ध्यान देते हो? वा० २। १००। ६६

यात्रा दण्ड विधानं च द्वियोनी सन्धिविग्रहौ।
कच्चिदेतान् महाप्राज्ञ यथा वदनुमन्य से ॥
॥ २ १००। ७०॥

हे महाप्राज्ञ! शत्रु के ऊपर चढ़ाई दण्ड विधान सन्धि विग्रह-इन सभी बातों को तुम भली भाँति जानते हो या नहीं? तुम नीति शास्त्र के अनुसार तीन या चार मन्त्रियों को एक कर एक साथ अथवा उनसे अलग-अलग गुप्त परामर्श करते हो या नहीं?

वा० २। १०० ७० ७१॥

कच्चित्ते सफला वेदाः कच्चित्ते सफला क्रियाः।
कच्चित्ते सफला दाराः कच्चित्ते सफलं श्रुतम्॥
॥ २। १००। ७२॥

तुम अग्निहोत्र आदि अनुष्ठान करके वेदाध्यन को सफल करते हो? दान और भोग में लगाकर तुम अपने धन को सफल करते हो? शास्त्रानुकूल सन्तान उत्पन्न कर स्त्रियों को तुम सफल करते हो? तुमने जो शास्त्र श्रवण किया है, उसके अनुसार आचरण कर, उस शास्त्र श्रवण को तुम सफल करते हो? धर्म, अर्थ, काम से युक्त आयु तथा यश देने वाली जैसी बुद्धि मेरी है, वैसी तुम्हारी है या नहीं? अथवा मैंने जो धर्मानुकूल बातें कही है वे तुम्हें रुचिकर प्रतीत हुई या नहीं?

हे तात! मेरे पिता श्रीदशरथजी, पितामह श्रीअज महाराज जिस सम्मार्ग से चलते थे उससे चलते हो या नहीं? हे राघव! तुम स्वादिष्ट भोजन अकेले ही तो नहीं खा लेते? भोजन के समय उपस्थित मित्रों को देकर खाते हो न? जो नीतिज्ञ राजा धर्मानुसार प्रजा का पालन करता है वह सम्पूर्ण पृथ्वी का स्वामी होता हुआ, आत्म तत्व का ज्ञान प्राप्त कर दिव्य लोक जाता है?

इस सर्गमें श्रीराघवेन्द्रने श्रीभरतजी को जो धर्म, नीति आदिका उपदेश किया है, वह समस्त शास्त्रों का सारतम भाग है। इस एकही सर्ग के ठीक-ठीक स्वाध्याय से धर्म एवं राजनीति का सम्यग् ज्ञान प्राप्त हो सकता है। वेदावतार वाल्मीकि रामायण में समस्त वेदशास्त्र राजनीतिका विशद विवेचन कियागया है। इस प्रसंगमें जो धर्मशास्त्रका विवेचन किया है वह सर्वथा मननीय है।

वा० २।१००।७३-७६॥

क्रमशः

❀ श्रीमद् भागवत में अजामिलोपाख्यान ❀

व्याख्याता स्वामी सीतारामशरण



महर्षि श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित् से कहते हैं—परीक्षित् ! इस सम्बन्ध में महात्मागण एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। उसमें भगवान् विष्णु तथा यमराज के दूतों का संवाद है। महर्षि का तात्पर्य यह है कि केवल मेरे वचन ही प्रमाण नहीं है किन्तु प्राचीन इतिहास भी इस विषय में प्रमाण है।

श्रीविजय ध्वज तीर्थ कहते हैं कि जिनके वेद में अधिकार हैं उनके प्रायश्चित कहे गए। जिनके वेदाध्ययन में अधिकार नहीं है ऐसे स्त्री शूद्रादि जनों के प्रायश्चित्त कैसे हो सकेंगे ? इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि वैदिक हों अथवा अवैदिक, पुण्यात्मा हों या पापी, पुरुष हो या स्त्री, भगवन्नाम स्मरण मात्र से ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं अजामिल के इतिहास से इसी विषय का वर्णन करते हैं॥ २०॥

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः।
नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः॥
वन्द्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः।
बिभ्रत्कुटुम्बमशुचिर्यातयामास देहिनः॥
एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान्।
कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः॥
तस्य प्रवयसः पुत्रा दशतेषां तु योऽवमः।
बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम॥

भा० ६। २१-२४॥

अन्वयः—कान्यकुब्जे कश्चित् द्विजः नाम्ना अजामिलः दासीपतिः नष्टसदाचारः दास्याः संसर्गदूषितः आसीत्॥ २१॥ बन्द्यक्षकैतवैः चौर्यैः गर्हिताम् वृत्तिम् आस्थितः कुटुम्बम् बिभ्रत् देहिनः यातयामास॥ २२॥ राजन् एवम् निवसतः तत्सुतान् लालयानस्य तस्य आयुषः अष्टाशीत्या समाः महान् कालः अत्यगात्॥ २३॥ प्रवयसः तस्य दश पुत्राः तेषाम् तु यः अवमः बालः नाम्ना नारायणः च पित्रोः भृशम् दयितः॥ २४॥

अर्थः-कान्यकुब्ज नगर (कन्नौज) में एक दासी पति ब्राह्मण रहता था। अजामिल उसका नाम था। दासी के संसर्ग से दूषित होने के कारण उसका सदाचार नष्ट हो चुका था। वह पतित कभी यात्रियों को बाँधकर उन्हें लूट लेता कभी लोगों को जुए के छल से हरा देता। किसी का धन धोखे से ठग लेता किसी का चुरा लेता। इस प्रकार अत्यन्त निन्दनीय वृत्ति का आश्रय लेकर वह अपने परिवार का भरण पोषण करता था तथा दूसरे प्राणियों को बहुत ही सताया करता था। परीक्षित् ! इसी प्रकार वहाँ रहकर दासी के बच्चों का लालन पालन करता रहा। इस प्रकार उसकी आयु का बहुत बड़ा भाग ८८ वर्ष बीत गया। वृद्ध अजामिल के दस पुत्र थे। उनमें सबसे छोटे का नाम था नारायण। माता पिता उस बालक से बहुत प्यार करते थे।

॥ २२-२४॥

भाष्य:—श्रीवंशीधरने अजामिलके अनेक अर्थ किए हैं। 'अजा' प्रकृतिद्वारा ज्ञानका मीलन अर्थात् तिरोभाव जिसका हो वह अजामिल है। 'अजया प्रकृत्या ज्ञानस्य मीलोमीलनं तिरोभावो यस्य स अजामिल:।' अथवा अज श्रीहरि से पूर्व पुण्य सम्पादित ज्ञान का उन्मीलन जिसका हो गया हो वह अजामिल है। यहां ह्रस्व छान्दस् है। इस प्रकार अनेक अर्थ किये हैं। बन्दी का अर्थ है धन की आशासे धनिकों को 'बन्दी' बनालेता था तथा उनसे धनलेकर उनको छोड़ता था। 'अक्ष' का अर्थ है जुआ। कैतव का अर्थ है, कपट एवं चोरी आदि निन्दनीय वृत्तिसे कुटुम्बका पेट भरता था तथा प्राणियों को सताया करता था। 'राजन्' संबोधन का तात्पर्य यह है कि महर्षि कहते हैं कि तुम जैसे धर्मात्मा राजाके राज्यमें ऐसा एकभी धर्मसे च्युत पुरुष नहीं है किन्तु सभी धर्मात्माही हैं। इसप्रकार उसकी आयु के ८८ वर्ष बीत गए। दासी के द्वारा जो दस पुत्र हुए उनमें सबसे छोटे का नाम नारायण था। माता-पिता दोनों का प्रिय था अर्थात् पिता की भांति माता भी उस बालक को देखकर कृतार्थ थीं।

अजामिल महापापी था। उसने अपने छोटे पुत्र का नारायण नाम कैसे रखा, इस सम्बन्ध में महात्मागण एक इतिहास कहा करते हैं। प्राचीन कालमें महात्माओं की जमात देशके कोने-कोने में धर्म प्रचार के लिए घूमती रहती थी। महात्माओं का समुदाय संयोगवश उसी ग्राम में पहुँचा जहाँ अजामिल रहता था। सन्ध्याका समय था. महात्मागण ने इसी गाँव में विश्राम करने की दृष्टि से गाँव के बाहर जाते हुए किसी व्यक्ति से पूछा--कि यहाँ कोई भक्त है जहाँ हमलोग रात्रि में विश्राम कर सकें? दुष्टतावश उस पुरुषने महात्माओं से कहा कि यहाँ एक भक्त है, जिसका नाम अजामिल है। आप उसी के घर रात्ति में विश्राम करें। वह आपकी अच्छीसेवा करेगा। महात्मागण भगवन्नाम संकीर्तन करते हुए अजामिल के घर पहुँच गए। उस समय अजामिल घरपर नहीं था। कहीं लूट-पाट करनेके लिए गया हुआथा। घरमें उसकी पत्नी थी। महात्मागण उसके गृह के बाहर द्वार पर अपना डेरा डाल दिया। स्थान को अच्छी तरहसे स्वच्छ कर अपने ठाकुरजी को वहां पधराया। अजामिल की पत्नि सन्त समुदाय को देखकर प्रसन्न हुई किन्तु अजामिल कहीं इनके साथ बुरा व्यवहार न करे यह सोचकर दु:खी भी थीं। पत्नि ने ठाकुरजी के भोग के लिए अमनियां (दाल चावल आदि) भेजा। सन्तों ने प्रेम पूर्वक रसोई बनाई। भगवान् को भोग लगाया। भोजन (पंगत) के समय प्रसाद लेने के लिये भक्त को ढूँढा। किन्तु भक्त तो बाहर थे। सन्तों ने भगतिन को प्रसाद के लिए बुलाया। वह गर्भवती थीं अत: संकोच के कारण सन्तोंके पास आना नहीं चाहती थी। अन्त में सब सन्तों ने हठ किया तो अजामिल की गर्भवती पत्नि वहां आई। सन्तों ने उसे प्रसाद दिया तथा जान गए कि यह गर्भवती है इसलिए उससे कहा कि तुम्हारे गर्भ से पुत्र उत्पन्न होगा तथा उसका नाम नारायण रख देना। भगवान् की कृपा कभी-कभी साधनहीनों पर भी बरस जाती है। रात्रो में विलम्ब से अजामिल जब घर आया तो सन्तों की जमात देखकर वह चकित रह गया। पत्नि ने सारी कथा सुनाई कि व्यंग से किसी व्यक्ति ने सन्तों को हमारे दरवाजे पर भेज दिया। तुम इनके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं करना। इस प्रकार सन्तों की कृपासे ही उसके छोटे पुत्र का नाम नारायण रखा गया जो

वास्तविक भगवान् श्रीनारायण तक पहुँचा दिया। (२२—२४)

स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि।
निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥
भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालकस्नेहयन्त्रितः।
भोजयन् पाययन्मूढो न वेदागतमन्तकम् ॥
स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते।
मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥
स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषान् भृशदारुणान्।
वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥
भा० ६। १ २५–२८॥

अन्वयः—तस्मिन् कलभाषिणि अर्भके बद्धहृदयः सः जरठः तल्लीलाम् निरीक्षमाणः भृशम मुमुदे ॥ २५ ॥ बालकस्नेहयन्त्रितः मूढः भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् भोजयन् पाययन् आगतम अन्तकम न वेद ॥ २६ ॥ एवं वर्तमानः अज्ञः स मृत्युकाले उपस्थिते बाले नारायणाह्वये तनये मतिम चकार ॥ २७ ॥ सः पाशहस्तान् भृशदारुणान् वक्रतुण्डान् ऊर्ध्वरोम्णः आत्मानम् नेतुम आगतान् त्रीन् पुरुषान् दृष्ट्वा ॥ २८ ॥

अर्थः—बूढ़े अजामिल ने पुत्र में अत्यन्त मोह के कारण अपना सम्पूर्ण हृदय अपने बच्चे नारायण को सौंप दिया। वह अपने बच्चे की तोतली बोली सुन सुनकर उसकी बालसुलभ क्रीड़ाओं को देख देखकर फूला नहीं समाता था ॥२५॥ अजामिल बालक के मोहपाश में इतना बँध गया था कि जब वह कुछ खाता तब उसे भी अवश्य खिलाता जब कुछ पीता तो उसे भी अवश्य पिलाता था। इस प्रकार वह मोह से अतिशय मूढ़ हो गया था, उसे इस बात का पता ही न चला कि मृत्यु उसके सिर पर आ चुकी थी ॥२६॥ वह मूढ़ इसी प्रकार अपना समय बिता रहा था कि उसका मृत्युकाल उपस्थित हो गया। अब भी वह अपने पुत्र बालक नारायण के ही सम्बन्ध में सोचने लगा ॥ २७ ॥ इतने में ही अजामिल ने देखा कि उसे ले जाने के लिए यम के अत्यन्त भयङ्कर तीन दूत आए हुए हैं। उनके हाथों में पाश है। उनके मूहँ टेढ़े-मेढ़े हैं और शरीर रोमांचित है ॥ २८ ॥

भाष्यः—भगवान् की कृपा से अजामिल ने अपने सबसे छोटे पुत्र नारायण को मोहवश अपना सम्पूर्ण हृदय समर्पित कर दिया उस बालक में भी कुछ अलौकिक संस्कार थे जो अजामिल को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। प्रातः से सायं पर्यन्त अपने छोटे पुत्र नारायण का स्मरण तथा उससे लाड़ प्यार करता रहता। कभी कहता हे नारायण! दुग्ध पान करो। कभी कहता हे नारायण! चलो, तुम को स्नान करा दूँ। इस प्रकार लाड़ प्यार के द्वारा बार २ श्री नारायण नाम के उच्चारण होने से उसकी भक्ति भगवान् में हो गई इस सिद्धान्त का यहाँ उपयोग किया जाना चाहिए ऐसा श्रीधर स्वामी कहते हैं। 'एतच्च तदुपलालनादिश्रीनारायणनामोच्चारणमाहात्म्येन तद्भक्तिरेवाभूदिति सिद्धन्तोपयोगित्वेनापि द्रष्टव्यम।' इस प्रकार वह मूर्ख अपना जीवन बिता रहा था कि मृत्यु का समय आ गया। वह अन्तिम घड़ी में भी अपने पुत्र के विषय में ही सोच विचार रहा था। इतने में ही उसने देखा कि उसे ले जाने के लिए तीन भयानक यमदूत वहाँ आ गए। उनके हाथों में यमपाश है, मुख टेढ़े मेढ़े हैं तथा शरीर के रोएँ खड़े हुए हैं। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती जी लिखते हैं कि अजामिल ने कायिक, वाचिक, मानसिक तीन प्रकारके असंख्य पाप किएथे, तीन प्रकार के पाप के कारण ही तीन यमदूत आए किन्तु

श्रीभगवान् का नाम नारायण चार अक्षर का था। इसलिए उसको बचाने के लिए भगवान् के चार पार्षद् आए ॥ २५-२८ ॥

दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम्।
प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥
निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम्।
भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाऽपतन् ॥
विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम्।
यमप्रेष्यान् विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥
ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरःसराः।
के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥
(भा० ६ । १ । २९--३२)

अन्वयः आकुलेन्द्रियः दूरे क्रीडनकासक्तम् नारायणाह्वयम् पुत्रम् प्लावितेन स्वरेण उच्चैः आजुहाव ॥ २९ ॥ महाराज म्रियमाणस्य हरिकीर्तनम् ब्रुवतः पार्षदाः भर्तुः नाम निशम्य सहसा अपतन् ॥ ३० ॥ विष्णुदूताः दासीपतिम् अजामिलम् अन्तर्हृदयात् विकर्षतः यमप्रेष्यान् ओजसा वारयामासुः ॥ ३१ ॥ निषेधिताः ते वैवस्वतपुरःसराः तान् ऊचुः धर्मराजस्य शासनम् प्रतिषेद्धारः यूयम् के ॥ ३२ ॥

अर्थः—उस समय बालक नारायण वहां से कुछ दूरी पर खेल रहा था। यमदूतों को देखकर अजामिल अत्यन्त व्याकुल हो गया तथा उसने बहुत ऊँचे स्वर से पुकारा—नारायण ! ॥ २८ ॥ भगवान् के पार्षदों ने देखा कि यह मरते समय हमारे स्वामी भगवान् नारायण का नाम ले रहा है। उनके नाम का कीर्तन कर रहा है। अतः वे बड़े वेग से अतिशीघ्र वहां आ पहुँचे ॥ २० ॥ उस समय यमराज के दूत दासीपति अजामिल के शरीर में से उसके सूक्ष्म शरीर को खींच रहे थे। विष्णुदूतोंने उन्हें बल पूर्वक रोक दिया ॥३१॥ उनके रोकने पर यमराज के दूतों ने उनसे कहा—अरे ! धर्मराज की आज्ञा का निषेध करने वाले तुम लोग कौन हो ? ॥ ३२ ॥

भाष्यः—तीर्थ कहते हैं ब्रह्माण्ड से बाहर स्थित जगत् की सृष्टि आदि लीला विलास से युक्त पुन्नाम नरक से त्राण करने वाले नारायण नाम का ही भक्ति से अजामिल ने स्मरण किया। पूर्व जन्म के पुण्य के प्रभाव से उसके हृदय में भक्ति उत्पन्न हुई। दूरे 'क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम्' इस पंक्ति का उपर्युक्त अर्थ है। भगवान् के पार्षदोंने हरिकीर्तन का श्रवण किया क्योंकि नारायण उनके स्वामी के नाम है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि भगवान् के पार्षदों ने यमदूतों से कहा—अरे ! यह अजामिल वैष्णव है। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो इसको नहीं ले जाओ। इस प्रकार यमदूतों को रोक दिया ॥ २९—३२ ॥

कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ।
किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥
सर्वे पद्म पलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः।
किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥
सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः।
धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्ख चक्राम्बुजश्रियः ॥
दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा।
किमर्थं धर्मपालस्य किङ्करान्नो निषेधथ ॥
(भा० ६ । १ । ३३—३६)

अन्वयः—यूयं कस्य कुतः आयाताः कस्मात् अस्य निषेधथ देवा उपदेवाः किम् वा सिद्धसत्तमाः किम् ॥ ३३ ॥ सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः किरीटिनः कुंडलिनः लसत्पुष्करमालिनः ॥३४ सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः धनुर्निषङ्गासिगदाशंखचक्राम्बुजश्रियः ॥३५॥ स्वेन रोचिषा दिशः वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः धर्मपालस्य किंकरान् नः किमर्थम् निषेधथ ॥ ३६ ॥ (क्रमशः)

❀ परम धाम विज्ञान ❀

लेखक—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव 'अनुराग',



भगवान् के सर्व व्यापक होते हुए भी, वेद पुराणादि प्रमाणिक सद्ग्रन्थों एवं सन्त महात्माओं के वचनों में, उन्हीं भगवान् के प्रकृतिपार, निज धाम का भी वर्णन बराबर पाया जाता है। जीव कर्म बन्धन तथा आवागमन के चक्कर से मुक्त हो, उस परम धाम में जाकर कैवल्य-मोक्ष अथवा भगवान् के साथ दिव्य अप्राकृत नित्य लीला में प्रवेश प्राप्त करते हैं। गीता में भगवान् ने स्वयं अपने उस परम धाम का संकेत किया है। यथा—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

अर्थ—भगवान् कहते हैं— जहां न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा, न अग्नि। (तात्पर्य यह है कि जो स्वयं प्रकाश वान है) और वहाँ जाकर फिर नहीं लौटते, अर्थात् आवागमन के चक्कर से छूट जाते हैं। वह मेरा परम धाम है। भागवत में भी, भगवान् कृष्ण का गोप बालकों को अपने उस परम धाम का दर्शन कराना स्पष्ट है। यथा—

इति संचिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥

अर्थ—इस प्रकार चिन्तन करके परम करुणामय भगवान् हरि ने गोपों को तम के पार अपने निज लोग (निज धाम) का दर्शन कराया। उपनिषदों में भी उस परम धाम का वर्णन स्पष्ट है। यथा—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥
मु० २।२।१०)

अर्थ—वहाँ, न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा और तारे ही प्रकाश करते हैं, न ये बिजलियां ही वहां प्रकाश करती हैं, फिर यह लौकिक अग्नि की तो बात ही क्या है, तात्पर्य यह कि जब वहां सूर्य चन्द्र तारे और बिजली नहीं प्रकाश कर सकते, तो फिर यह अग्नि वहाँ क्या प्रकाश करेगी, कारण कि उसके प्रकाश करने पर ही (उसी के प्रकाश से), सर्व-ऊपर बतलाये हुये सूर्य चन्द्र आदि सब प्रकाशित होते हैं, उसी के प्रकाश से, यह सम्पूर्ण जगत्, प्रकाशित होता है। वेद मन्त्रों में भी—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।

अर्थात् दिव्य सूरि लोग उस विष्णु के परम पद का नित्य दर्शन करते हैं।

रामचरितमानस में भी—

तनु तजि तात जाहु मम धामा।
देहुँ काह तुम्ह पूरन कामा ॥
करेहु कलप भरि राजतुम्ह,सोहिं सुमिरेहु मनमाहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु, जहां सन्त सब जाहिं ॥

अब इस प्रकार एक ओर परमात्मा को सर्वत्र समान रूप से जगत् के कण कण में व्यापक कहना, और दूसरी ओर प्रकृति पार उनका निज

धाम का भी वर्णन होना, दोनों बातों में स्पष्ट विरोधाभास होने से; तर्क दृष्टि से देखने पर आश्चर्य और सन्देह यह होता है कि यह दोनों बातें एक साथ कैसे सम्भव हो सकती हैं। तात्पर्य यह कि वह परमात्मा यदि सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है, तो फिर इस विश्व जगत् के बाहर उसका निज धाम होना कैसे संभव है ? और यदि इस प्रकार उनका निज धाम माना जाय तो फिर उन्हें सर्वत्र समान रूप से व्यापक कैसे कह सकेंगे ? अतएव इस विरोधाभास के समन्वयार्थ कुछ वैज्ञानिक स्पष्टीकरण उपस्थित करना प्रस्तुत निबन्ध का विषय है।

यह तो निश्चित है कि परमात्मा को लोग सर्वव्यापक मानते अवश्य हैं, पर साथ ही यह भी सत्य है कि उनकी यह मान्यता अधिकतम शास्त्र प्रमाण अथवा अनुभवी सन्त महात्माओंके बचनों पर ही आधारित रही है। प्रत्यक्ष रूप से तो परमात्मा का दर्शन अथवा अनुभव विशेष साधना के द्वारा किन्हीं किन्हीं विशेष साधकों और भक्तों को ही हो पाता है। इस बात पर ध्यान देते हुए उपर्युक्त समन्वय के लिए एक प्रश्न उठाकर प्रथम उस प्रश्न के संभावित उत्तरों पर दृष्टिपात करना उपयोगी होगा। वह प्रश्न यह है कि, यदि परमात्मा जगत् के कण कण में सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है, तो फिर उसका दर्शन अथवा अनुभव सभी को क्यों नहीं होता ? कारण कि जो वस्तु सामने सर्वत्र उपस्थित ही है, उसका दर्शन अथवा अनुभव सभी जन साधारण को होना एक स्वाभाविक बात है।

इस प्रश्न के उत्तर में कुछ लोग कह सकते हैं, कि परमात्मा सर्वव्यापक अवश्य है, पर वह साकार न होकर निराकार रूप से सबमें व्याप्त है। अतएव निराकार होने से उसका दर्शन सर्व साधारण के लिये सम्भव न होकर, विशेष योगी महापुरुष योग दृष्टि से उसका अनुभव कर पाते हैं। पर उपस्थित समस्या को हल करने के लिये यह उत्तर पर्याप्त और सन्तोषजनक इसलिये नहीं है कि निराकार पदार्थ तो और भी हैं, जैसे वायु और आकाश भी निराकार हैं, पर वायु का अनुभव सभी को होता है, आकाश को भी सभी देखते हैं। तब उसी प्रकार जगत् के कण-कण में सर्वत्र व्याप्त उस निराकार परमात्मा का भी किसी सीमा तक दर्शन अथवा अनुभव स्वाभाविक रूप में जन-साधारण को क्यों नहीं होना चाहिये ?

कुछ लोग कह सकते हैं कि वह निराकार परमात्मा सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी वह स्थूल दृष्टि का विषय न होकर सूक्ष्म दिव्य दृष्टि द्वारा ही उसका अनुभव तथा साक्षात्कार सम्भव होता है। इस कारण सर्वसाधारण को उसका दर्शन अथवा अनुभव नहीं होता।

पर यह उत्तर भी पर्याप्त और सन्तोषजनक तब हो सकताहै जबकि उस परमात्मा को स्थूलता में व्याप्त न मानकर केवल सूक्ष्मता और दिव्यता में ही उसे सीमित माना जाय। पर ऐसा न होकर उसे सूक्ष्मता, स्थूलता सभी में समान रूपसे व्याप्त माना जाता है, तो फिर स्थूल में भी सर्व साधारण को स्वाभाविक रूपसे ही उसका दर्शन अथवा अनुभव क्यों नहीं होना चाहिये ?

उपर्युक्त कारणों को पर्याप्त न मानने पर भी, परमात्मा के; जगत् के कण-कण में सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी, उसका दर्शन अथवा अनुभव सभी जन साधारण को स्वाभाविक रूपसे न होने का कुछ न कुछ यथार्थ और न्यायसंगत कारण तो अवश्य है ही। अतएव उस यथार्थ कारणकी खोज

के लिए उदाहरण रूपसे हमें लोक व्यवहार के स्वाभाविक नियमों की ओर दृष्टिपात करना उचित होगा।

संसार में देखा जाता है कि कोई वस्तु हमारे सामने उपस्थित होते हुए भी जब हम उसे देख नहीं पाते, तो उसका प्रायः किसी न किसी रूप में एकही कारण हुआ करता है। वह यह कि अवश्य ही उस वस्तु के और हमारे बीच में कोई परदा होता है, तभी सामने उपस्थित होते हुए भी हम उस वस्तु को देख नहीं पाते। और उस परदे के हट जाने परही हम उसे देख पाते हैं। अतएव ऐसीही कोई बात हमारे और सर्वव्यापक परमात्मा के बीचमें भी सम्भव हो सकती है, जिसके कारण उस परमात्मा के जगत् के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी सर्वसाधारण को उनका दर्शन अथवा अनुभव स्वाभाविक रूपसे नहीं हो पाता। साथही वह परदाभी हमारे और सर्वव्यापी परमात्मा के बीच कुछ विचित्र और अलौकिक ही हो सकता है, जिससे परदा भी रहे, साथही उन परमात्मा की सर्वव्यापकता में कोई अन्तर भी न आने पावे।

इस प्रकार सामने रहते हुएभी किसी वस्तु को दृष्टि और स्पर्श से दूर रखने वाले आवरण कितने प्रकारके होने हैं, इस बात परभी ध्यान देना होगा, क्योंकि इसी के सहारे हम अपने और सर्वव्यापी प्रभुके बीच चमत्कार पूर्ण आवरण का अन्वेषण और अनुसन्धान कर सकेंगे।

साधारण रूप से एक आवरण होता है, दीवार जैसा, इसमें दीवाल के बीचमें होने के कारण उसपार की वस्तु सामने उपस्थित होते हुए भी हमें दिखाई नहीं देती। पर हमारे सर्वव्यापी परमात्मा के बीच इस तरह का कोई परदा नहीं है। कारण कि यदि ऐसा कोई परदा हो, तो वह सर्वत्र जगत् के कण-कण में व्याप्त प्रभु परदे में भी तो व्याप्त है। अतएव ऐसी स्थिति में उस परदे पर ही हमें उस व्यापक परमात्मा का दर्शन और अनुभव बिना किसी प्रयत्न विशेषके स्वाभाविक रूप में ही होना चाहिये।

दूसरा एक प्रकार का परदा निर्माण की हुई वस्तुओं, ऐसी ही भौतिक विज्ञान के वायुयान, रेडियो, टेलिविजन इत्यादि अनेक आश्चर्य चकित करने वाले आविष्कारों के साथभी दिखाई पड़ता है। वह इस प्रकार कि वस्तु के निर्माण होकर सामने आ जाने के पूर्व, वह वस्तु हमारे सामने क्यों नहीं दृष्टिगोचर हुई ? इस प्रश्न पर विचार करने से उत्तर में प्रायः एकही कारण सामने आएगा, वह यह कि अनेक वस्तुओं के युक्ति पूर्वक मेलसे ही एक नई वस्तुका अविष्कार हुआ करता है। अतएव निर्माण अथवा अविष्कार होकर सामने आ जाने के पूर्व उस युक्तिका अज्ञान ही परदा था, जिसके कारण वह वस्तु पहले सामने न उपस्थित हो सकती थी और उस अज्ञान वा परदा हटते ही अर्थात् उस युक्ति का ज्ञान होते ही वह वस्तुएँ हमारे दृष्टिगोचर हो सकी। पर हमारे और सर्वव्यापी परमात्मा के बीच इस तरह का कोई आवरण भी सम्भव नहीं है। कारण यह कि वस्तुओं के युक्ति पूर्वक मेलद्वारा निर्माण अथवा अविष्कार की हुई वस्तुओंकी तरह परमात्माभी किसी निर्माण अथवा अभ्यास का परिणाम होता, तो इस प्रकार का आवरण भी संभव था। पर वह प्रभु किसी प्रकार के निर्माण अथवा अभ्यास का परिणाम न होकर वह तो सच्चिदानन्दघन, सब चेतनों का परम चैतन्य, सबका स्वामी और जगत् का नियन्ता है और सभी प्रकार के निर्माणों अथवा आविष्कारों के पीछे मूल रूपसे उसका ही नियन्त्रण किया

हुआ है। अनेक प्रकार के निर्माण अथवा आविष्कार के लिये प्रयत्नशील, भौतिक विज्ञानवेत्तागण वस्तुतः किन्हीं स्वाभाविक नियमों का निर्माण नहीं करते, किन्तु ज्ञात अथवा अज्ञात रूपसे प्रकृति के अन्तर्गत उस सर्व व्यापी प्रभु के नियन्त्रण के नियमों को ही खोजते हैं, और किसी प्रकार उन सूक्ष्म नियमों तक पहुँच हो जाने पर उन्हीं के अनुसार युक्ति पूर्वक वस्तुओं के संयोग द्वारा नई वस्तुओं के निर्माण अथवा आविष्कार का प्रयत्न करते हैं।

एक और विचित्र परदा होता है—बाजीगर नट के इन्द्रजाल का। बाजीगर नट एक जनसमूह के बीच उपस्थित होकर जादू के द्वारा अनेक प्रकार के आश्चर्य जनक दृश्य दिखाता है, जो वास्तव में उस रूप में सत्य न होकर केवल जादू के प्रभाव उस रूप में दर्शकों को दिखाई पड़ते हैं। इसे प्रायः नजरबन्दी का खेल कहा जाता है। इस जादू अथवा नजरबन्दी के परदे में विचित्रता यह होती है कि वास्तव में उस स्थल पर हर एक वस्तु अपनी जगह पर जैसी की तैसी बनी हुई भी दर्शकों को दिखाई दूसरे रूपों में पड़ती है और जादू का प्रभाव हटा लेने पर फिर पूर्ववत् जैसी की तैसी दिखाई देने लगती है। उदाहरण के लिये जैसे-बाजीगर नट जादू के द्वारा रुपये के ढेर दिखा देता है पर वास्तव में वहाँ रुपये न होकर जादू के प्रभाव से रुपये के ढेर दिखाई पड़ते हैं। उस जादू के रुपयों से कोई व्यापार नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता तो बाजीगर नट इस प्रकार रुपयों के ढेर पैदा कर स्वयं बहुत बड़ा धनी बन जाता, और पैसे की लालच में सड़कों पर अथवा द्वार-द्वार जादू का खेल दिखाने की उसे आवश्यकता न होती। पर वह रुपयों के वास्तविक न होकर केवल जादू के प्रभाव से उस रूप में थोड़ी देर के लिये दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार बाजीगर नट शरीर को टुकड़े टुकड़े कटा हुआ दिखाकर पुनः जादू का प्रभाव हटाकर शरीर को फिर पूर्ववत् जैसा का तैसा दिखा देता है। वास्तवमें शरीर कटा नहीं, किन्तु केवल जादू के द्वारा कटा हुआ दिखा दिया गया था। रामचरितमानस में अंगद रावण संवाद के अन्तर्गत प्रसंगवश ऐसे जादू की चर्चा की गयी है। यथा—

इंद्रजाल कहुँ कहिय न बीरा।
काटइ निजकर सकल सरीरा ॥

अवश्य ही तीसरे प्रकारके इस जादूके विचित्र आवरण को दृष्टान्त रूप में सामने रखकर हम अपने और सर्वव्यापी परमात्मा के बीच आवरण की रूपरेखा को समझने में किसी सीमा तक सफल होने की आशा कर सकते हैं। अतएव आइये, इसी के सहारे उपर्युक्त प्रश्नको हल करनेका प्रयत्न करें।

इतना तो निश्चित है कि जादूके सारे खेल बाजीगर नट के संकल्प से ही प्रकट होते हैं। इसी प्रकार श्रुति स्मृति और अनुभवी महापुरुषों द्वारा यह भी प्रसिद्ध है कि यह जगत् प्रपंच परमात्मा के संकल्प से ही उत्पन्न है। इस सम्बन्ध में प्रमाणरूप से "एकोऽहं बहु स्याम्" श्रुति प्रसिद्ध है। जिसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि के पूर्व परमात्मा ने संकल्प किया कि मैं एक हूं बहुत हो जाऊँ, और इसी संकल्प के द्वारा उसने सृष्टि व्यापार को कार्यान्वित किया।

इस श्रुति से यह भी ध्वनित होता है कि परमात्मा ने इस जगत् प्रपंच की रचना अपने से पृथक् कहीं बाहर की सामग्रीसे नहीं की, किन्तु वह स्वयं ही इस जगत् के रूप में परिणत हुआ है।

(क्रमशः)

❀ शरीरस्थ रहस्यमय-तत्त्व ❀

डा० रमेशचन्द्र रावत



किसी भी पदार्थ को भली भांति जानने के लिए हमें उसके विभिन्न तत्त्वों को समझने की आवश्यकता होती है। वैसे ही हमारा यह क्षण-भंगुर कलेवर है। सर्व प्रथम हमें यह ज्ञान होना आवश्यक है कि आत्मा क्या है ?

स्थूल सूक्ष्म कारण शरीराद्यतिरिक्तः पञ्चकोशातीतः सन्नवस्थात्रय साक्षी सच्चिदानन्दस्वरूपः सन् यस्तिष्ठति स आत्मा।

अर्थात् स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर और कारण शरीरसे अन्य, अन्नमय आदि पाँचों कोशों से पृथक्, और जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति रूप तीन अवस्थाओं का साक्षी होकर जो सत् चित् और आनन्द स्वरूप से रहता है। उसे आत्मा कहते हैं। जब हमें यह ज्ञान हो जाता कि आत्मा क्या है, तब प्रश्न उठता है कि जब आत्मा से स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर से एवं कारण शरीर से अन्य; अन्नमय आदि पञ्च कोषों से पृथक् और सच्चिदानन्द स्वरूप से रहता है तो स्थूल शरीर किस वस्तु का नाम है अर्थात् स्थूल शरीर क्या है ?

पञ्चीकृत पञ्च महाभूतैः कृतं सत्कर्म जन्यं सुखदुःखादि भोगायतनं शरीरं, अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यतीतिषड्विकार वदेतत्स्थूल शरीरम्।

कहने का तात्पर्य यह कि पञ्चीकृत पृथ्वी अप तेज जल और आकाश इत्यादि पांचो महाभूतों से किया गया, कर्मों के द्वारा उत्पन्न, सुख और दुःख आदि के भोगने का प्रधान आश्रय, नाश अर्थात् क्षय होने वाला और स्थिति उत्पत्ति वृद्धि घटना बढ़ना ढीला पड़ना और नाशरूप छहों विकार वाला स्थूल शरीर कहलाता है। सूक्ष्म शरीर क्या है यही प्रश्न उठता है। इसके बारे में कहा गया है—

अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतैः कृतं सत्कर्म जन्यं सुखदुःखादिभोगसाधनं पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च प्राणादयः मनश्चैकं बुद्धिश्चैका एवं सप्त दश कलाभिः सह यत्तिष्ठति तत्सूक्ष्म शरीरम्।

सारांश यह कि अपञ्चीकृत पृथ्वी आदि पांचों महा-भूतों से निर्मित कर्मों से प्रकटी भूत, सुख और दुःख आदि के भोगने का साधन, पांच ज्ञानेन्द्रियों के पाँच कर्म इन्द्रियों के, पांच प्राणों के, एक मन, एक बुद्धि, के इस प्रकार सत्तरह कलाओं के साथ जो रहता है वह सूक्ष्म शरीर कहलाता है।

ज्ञानेन्द्रियाँ क्या हैं यह भी हमारा मन पूछता है तब हमें यह कहना ही पड़ेगा कि—

श्रोत्रं त्वक् चक्षुः रसना घ्राणमितिपञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि। श्रोत्रस्य दिग्देवता। त्वचो वायुःचक्षुषः सूर्यः। रसनाया वरुणः। घ्राणस्याश्विनौ इति ज्ञानेन्द्रिय देवताः। श्रोत्रस्य विषयः शब्दग्रहणम्। त्वचो विषयः स्पर्शग्रहणम्। चक्षुषो विषयो रूपं ग्रहणम्। रसनाया विषयोरसग्रहणम्। घ्राणस्य विषयो गन्ध ग्रहणमिति।

कहने का मतलब यह कि श्रोत्र-कान, त्वक्

स्पर्श की इन्द्रिय, चक्षु-नेत्र, रसना-जिह्वा, और, घ्राण-नासिका ये पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। श्रोत्र इन्द्रिय की देवता दिशा है। त्वक् इन्द्रिय की देवता वायु है। चक्षु इन्द्रिय की देवता सूर्य है। रसना इन्द्रिय की देवता वरुण है। घ्राण इन्द्रिय की देवता अश्विनी कुमार है। श्रोत्र इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान। त्वक् इन्द्रिय से स्पर्श ज्ञान। चक्षु इन्द्रिय से शुक्ल आदि रूप का ज्ञान। रसना इन्द्रिय से मधुर आदि रस का ज्ञान। और घ्राण इन्द्रिय से सुगन्धि और दुर्गन्धि का ज्ञान होता है।

इसी प्रकार—

वाक् पाणिपदापायूपस्थानीति पञ्चकर्मेन्द्रियाणि। वाचो देवता वन्हिः। हस्तयोरिन्द्रः। पादयोर्विष्णुः। पायोर्मृत्युः। उपस्थस्य प्रजापतिरितिकर्मेन्द्रिय देवताः। वाचो विषयोंभाषणम् पाण्योर्विषयो वस्तु ग्रहणम्। पादयोर्विषयो गमनम् पायो विषयो मल त्यागः। उपस्थस्यविषयानन्द इति।

संक्षेप में वाक् वाणी, पाणि-हस्त, पाद-चरण, वायु-गुदा, और उपस्थ-लिङ्ग ये पांचों कर्म इन्द्रिय हैं। वाक् इन्द्रिय का देवता अग्नि है। हस्त इन्द्रिय की देवता इन्द्र है। पाद इन्द्रिय की देवता विष्णु है। गुदा इन्द्रिय की देवता मृत्यु है। लिङ्ग इन्द्रिय की देवता प्रजापति हैं। वाक् इन्द्रिय से बोलते हैं। हस्त से वस्तु ग्रहण करते हैं। पैर से गमन करते हैं। गुदा से मल त्याग करते हैं। (तथा) लिङ्ग से विषयानन्द करते हैं।

स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर तथा ज्ञान एवं कर्मेन्द्रियों के सम्बन्ध में हम ऊपर कह आये हैं अब कारण शरीर के बारे में पाठकों की सेवा में बतलायेंगे—

अनिर्वाच्यानाद्यविद्यारुपं शरीरद्वयकारणमात्रं सत्स्वरूपाज्ञानं निर्विकल्परूपं यदस्ति तत्कारण शरीरम्।

अर्थात् कारण शरीर वह है, जो अनिर्वाच्य और अनादि अविद्या रूप जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर का केवल कारण है जो सत् स्वरूप अज्ञान है और जिसे किसी विशेषता का ज्ञान नहीं होता है।

ऊपर हमने शरीर सम्बन्धी कुछ ही कलाओं का वर्णन किया है अगले अंक में पाठक बन्धुओं की सेवा में और भी शारीरिक रहस्यमय तत्त्वों का विवेचन रखा जायगा।

न मिटै भव संकट दुर्घट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न विराग न ज्ञान कहूं सब लागत फोकट झूठ जटो॥
नर ज्यों जनि पेट कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुख चाहिये तो रसना निसिवासर राम रटो॥

आगम वेद पुरान बखानत मारग कोटिन जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईस कहावत सिद्ध सयाने॥
धरम सबै कलिकाल ग्रसे जप जोग विराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै तुलसी हम जानकी नाथ के हाथ विकाने॥

❀ गिरा अरथ जल वीचि सम ❀

लेः—मानस-महामनीषी पं० श्रीरामकिंकर उपाध्याय

गिरा अरथ जल बीचिसम, कहिअत भिन्न न भिन्न।
बन्दउँ सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥

अर्थ—वाणी और अर्थ एवं जल और तरंग की भांति, जो भिन्न प्रतीत होते हुए भी वस्तुतः अभिन्न हैं, जिन्हें दीन जन अत्यन्त प्रिय हैं, मैं उन श्रीसीता और श्रीरामके श्रीचरणोंकी वंदना करताहूं।

श्रीतुलसी के प्रतिपाद्य और आराध्य श्रीराम एक साधारण राजकुमार नहीं हैं, और न तो श्रीसीता उनकी दृष्टि में एक नारीमात्र हैं। उनकी दृष्टि में अद्वितीय ब्रह्म-तत्त्व ही स्वयं अपने आपको दो रूपों में अभिव्यक्त करता है द्वैत भेद और दूरीकी सृष्टि करता है। अद्वैत में व्यवहार की सम्भावनाओं का सर्वथा अभाव है। वेदान्तियों का ब्रह्म निर्गुण, निराकार,, अज और अव्यक्त हैं, क्योंकि उसे भय है कि इससे भिन्न मानने पर ब्रह्म परिछिन्न हो जायगा, उसकी अद्वितीयता समाप्त हो जाएगी। किन्तु सगुण-साकारवादियों की दृष्टि में ईश्वर आकृत वाला है। गोस्वामीजी वादके घेरों से मुक्त हैं। तार्किक परिणति को अधिक चिन्ता किए बिना वे दोनों में सामंजस्य को स्थापना का प्रयास करते हैं। भावुक तर्क से भागता है, तार्किक भावुकता को पास भी नहीं फटकने देता। किन्तु गोस्वामीजी तर्क को भावुकता का अनुगामी बनाकर उसे अधिक ग्राह्य बना देते हैं। भावुकता के द्वारा स्वयं तो रस लिया जा सकता है, किन्तु वह दूसरों के लिये ग्राह्य नहीं बन पाता। तार्किक का अतिवाद अपनी बात मनवाने के प्रयासमें शुष्कता की उस मरुभूमि तक पहुँच पाता है, जहां रस का सर्वथा अभाव है। कविता भावुकता की अभिव्यक्ति है, दर्शन तर्क के माध्यम से अपने सिद्धान्त की स्थापना करता है। श्रीरामचरितमानस दर्शन और काव्य का वह धूप-छाँही वस्त्रहै, जिसमें दोनों रंग एक साथ झलक उठते हैं।"

भावुकता के क्षणों में गोस्वामीजी (दोहावली) में कह उठते हैं—

जौं जगदीश तौ अति भलो, जौं महीश तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम-चरन अनुराग॥

"यदि ये ईश्वर हैं तो कहना ही क्या" किन्तु यदि वे मनुष्य हैं तो भी मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है। मैं जन्म-जनमान्तर में श्रीराम के चरणों में ही अनुराग चाहता हूं।"

किन्तु ऐसे भी क्षण आते हैं जब वे अपनी बात दूसरों तक पहुँचाना चाहते हैं, तब वे उसे तार्किक शैली के माध्यम से पाठक अथवा श्रोता के समक्ष अपने अनुभूत सत्य को रख देते हैं। बंदना-प्रसंग के उपर्युक्त दोहे में भी काव्य और दर्शन का वही मिला--जुला रंग हमारे समक्ष आता है।

श्रीसीता और श्रीराम के सम्बन्ध को वे वाणी और अर्थ के दृष्टांत के द्वारा हृदयंगम कराना चाहते हैं। अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने केलिए भाषा ही सबसे सशक्त माध्यम है। अमूर्त भाव और बिचार वाणीके माध्यम से आकृति ग्रहणकर लेते हैं। किन्तु उन्हें अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाने के लिए भाषा को और भी सरल रूप देना होता है। वाणी यदि अमूर्त को मूर्त बनाती है, तो अर्थ

उसे सरलतासे दूसरों तक पहुँचा देता है। निर्गुण की सगुणता के पीछे भी यही दर्शन विद्यमान है। निर्गुण-निराकार लोक ग्राह्य नहीं हो सकता। उसे लोक-मंगल के लिए आकृति स्वीकार करनी ही होगी। जिस शक्तिका आश्रय-लेकर ब्रह्म निर्गुण से सगुण बनता है, वही श्रीसीता हैं।

इस दृष्टान्त में वाणी के स्थान पर श्री-सीता का वर्णन स्वाभाविक ही था। श्रीसीता मूर्तिमती भक्ति हैं। भक्ति भावना से प्रेरित अन्तःकरण ही निर्गुण-निराकार ब्रह्म को सगुण-साकार रूप में परिवर्तित कर सकता है। श्रीसीता यदि वाणी के रूप में अव्यक्त ब्रह्म की प्रथम अभिव्यक्ति हैं तो श्रीराम-रूप अर्थ के माध्यम से ही भक्ति की करुणा को हृदयंगम किया जा सकता है। रामचरितमानस में श्रीराम ही सब-कुछ करते हुए प्रतीत होते हैं, किन्तु उनके मूल में प्रेरक शक्ति के रूप में भगवती सीता ही विद्यमान हैं।

मनु निर्गुण-निराकार ब्रह्म को सगुण-साकार रूप में देखना चाहते थे।

उर अभिलाष निरन्तर होई।
देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी।
जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥
नेति-नेति जेहि बेद निरूपा।
निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
देखिउ प्रभु सेवक बस अहई।
भगत हेतु लीला तनु गहई॥
जौ यह बचन सत्य श्रुति भाषा।
तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

एक दिन उनकी अभिलाषा साकार होउठी। ब्रह्म उनके समक्ष प्रकट हुआ, पर वह अकेला नहीं था, क्योंकि उसे यह ज्ञात था कि निराकार की साकारता ही मनु की अन्तिम अभिलाषा नहीं है, अपितु उससे तो लीला के विस्तार का भी अनुरोध किया जाने वाला है। और इसके लिए उसे दो रूपों में अभिव्यक्त होना होगा। अतः वह श्रीसीता के रूप में भी मनु के सामने प्रकट था। मनु के समक्ष श्रीराम ने श्रीसीता का परिचय आदिशक्ति के रूप में दिया:

आदिसक्ति जेहि जग उपजाया।
सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

इस प्रकार वाणी का परिचय अर्थ के माध्यम से प्राप्त हुआ। किन्तु गिरा और अर्थ के दृष्टान्त से भी गोस्वामीजी को पूर्ण संतोष नहीं होता है। क्योंकि वाणी और अर्थ श्रुतिग्राह्यता तो वेदान्त के ब्रह्म में भी है। वेदान्त के ब्रह्म का वर्णन करने के लिए भी वाणी और अर्थ का ही आश्रय लेना पड़ता है। सगुण-साकार की समग्रता तो उसके दृष्टिगोचर होने में ही है। इसलिए पहले दृष्टान्त में जहाँ श्रुति की प्रधानता है, वहाँ जल और बीचि का दूसरा दृष्टान्त दृष्टि-ग्राह्य है। जल में उठने वाली तरंगो को देखकर किसके अन्तःकरण में आनन्द हिलोरें नहीं लेने लगता?

श्रीराम-समुद्र में सीता बीचि हैं। समुद्र में उठती हुई लहरों का संबंध या तो चन्द्रमा से है अथवा भीषण तूफान से। चन्द्रमा की बढ़ती हुई कला को देखकर समुद्र तरंगायित हो उठता है। चन्द्रमा की पूर्णता को देखकर समुद्र का आनन्द उसके (समुद्र के) हृदय में नहीं समाता, और वह अपनी लोल लहरों से उमड़ता हुआ चन्द्रमा का अभिनन्दन करता है। ब्रह्म प्रशान्त समुद्र की भाँति है, और भक्त के अन्तःकरण का भाव चन्द्रमा के समान प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता है। भक्त के प्रतिक्षण वर्द्धनशील भाव को देखकर ईश्वर

का हृदय प्रीति, करुणा और वात्सल्य से उद्वेलित हो उठता है—कृपा की लहरें उठने लगती हैं।

दूसरी प्रक्रिया तूफान द्वारा तरंगायित होने की है। उस समय समुद्र के विकराल रूप का साक्षात्कार होता है। जब रावण-जैसा कोई दुर्दमनीय व्यक्ति अपने अत्याचारों से विश्व को संत्रस्त कर देता है, तब समाज की व्याकुलता ही ईश्वर के अन्तःकरण में संहार-शक्ति को चैतन्य करती है। उस समय स्वयं को अजेय मानने वाले दुर्दान्त दस्यु उन लहरों के द्वारा डुबोकर नष्ट कर दिये जाते हैं।

श्रीराम समुद्र हैं, और श्रीसीता वीचि। वस्तुतः वे अनुग्रह और संहार शक्ति की घनीभूत रूप हैं। यद्यपि वीचि और समुद्र में कोई भेद नहीं है, फिर भी भक्तों के भाव की पूर्ति के लिए अथवा दुष्टों का संहार करने के लिए ईश्वर स्वयं को द्विविधि रूपों में विभक्त कर अवतरित होता है। जनकपुर और अयोध्या में श्रीसीता और राम का लीला-विलास अनुग्रह करुणा और वात्सल्य की लहरों के द्वारा भक्तों के हृदयको आह्लादित करता है। लंका में वही विकराल संहार शक्ति के रूप में रावण को डुबोकर लोक को अभिशाप से मुक्त करता है।

भिन्नता-अभिन्नता के इस खेल को रामचरितमानस में बड़े ही कलात्मक रूप में अभिव्यक्त किया है। चित्रकूट की यात्रा में सुशीतल वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए तीन पथिकों का दर्शन करने के लिए ग्रामवासियों की भीड़ उमड़ पड़ी। पुरुष अपलक दृष्टि से सौंदर्य निहारने लगे, किन्तु ग्रामवासिनी महिलाओं को इससे संतोष नहीं होता। वे श्रीसीता के निकट जाकर उनके चरणों में प्रणाम करती हैं एवं भावभीनी शब्दावली में भोली-भाली ललनाओं ने पूछ ही तो लिया :

सीय समीप ग्रामतिय जाहीं।
पूछत अतिसनेह सकुचाहीं॥
बार-बार सब लागहिं पाएँ।
कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं।
तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं॥
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी।
बिलगु न मानब जानि गँवारी॥
राजकुअँर दोउ सहज सलोने।
इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने॥
स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुख, सरद सरोरुह नैन॥
कोटि मनोज लजावनि हारे।
सुमुखि, कहहु को आहिं तुम्हारे॥

कितना सीधा और नन्हा-सा प्रश्न? किन्तु यही नन्हा प्रश्न इतना कठिन बन गया कि जिन सीताजी की वंदना "जासु कृपा निर्मल मति पावउँ" कहकर की गई, वे भी इसका उत्तर देने में स्वयं को असमर्थ अनुभव करने लगीं। उत्तर के लिए उन्हें वाणी के स्थान पर नेत्रों के संकेत का ही आश्रय लेना पड़ा :

बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी।
प्रिय तनु चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि॥

कुछ लोगों की दृष्टि में यह श्रीसीता के शील का चित्र है। स्वयं अपने मुख से शीलमयी सीता अपने पति का परिचय कैसे दें? किन्तु एक विद्वान् ने कहा कि यह प्रसंग ग्राम्य दोष से युक्त है। उनका कथन यह था कि यदि परिचय न दे पातीं, तो इसे शील के दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था। किन्तु मुख पर घूँघट डालकर,

तिरछी चितवन से देखकर परिचय देना शील कैसे कहा जा सकता है ? किन्तु इस प्रकार के विचार वे ही व्यक्त करते हैं, जिन्हें रामचरितमानस के दर्शन का सही ज्ञान नहीं है। गोस्वामीजीने वाणी के द्वारा परिचय न दिलाकर न केवल संकोच की ही रक्षा की, अपितु दार्शनिक दृष्टि से श्री ब्रह्म की अनिर्वचनीयता की रक्षा की। श्रीसीता क्या बतायें कि राघवेन्द्र से उनका कौन सा नाता है ? जनकपुर के धनुष-यज्ञ में सभी लोगों ने श्रीराम से कोई-न कोई नाता जोड़ लिया। किन्तु जब कवि से पूछा गया कि श्रीसीता ने श्रीराम को किस भाव से देखा, तब कवि असमर्थता के स्वर में बोल पड़ा :

रामहिं चितव भाव जेहि सीया।
सो सनेह सुख नहिं कथनीया ॥

कवि अपनी ही असमर्थता का वर्णन नहीं करता, अपितु उसका दावा तो यह है कि श्रीजानकी स्वयं भी उस भाव का वर्णन कर सकने में असमर्थ हैं :

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ।
कवन प्रकार कहै कवि कोऊ ॥

इसीलिए ग्रामवासिनियों के प्रश्न इस प्रश्न के उत्तर में कि "यह राजकुमार आपके कौन हैं," उन्होंने मुख पर अंचल डालकर जहाँ शृंगारिक नाते का परिचय दिया, वहीं यह अंचल अद्वैत में भेद करने के लिए कल्पित आवरण की ओर भी संकेत कर रहा है। सम्बन्ध दो पृथक् व्यक्तियों में ही होता है। किन्तु व्यवहार की सृष्टि के लिए अद्वैत में यह अंचल कल्पित सम्बन्ध का प्रतीक है। किसी ने प्रश्न किया, जल और तरंग का क्या नाता है; तो भिन्न-भिन्न लोगों से इसके कई उत्तर प्राप्त हुए। एक ने कहा, 'जल से तरंग का जन्म होता है। इसलिए दोनों के मध्य में पिता-पुत्री का नाता है।' दूसरे ने कहा, 'दोनों साथ साथ खेलते हैं अतः भाई-बहन हैं।' किसी को लगा कि 'जल और तरंग के बीच में जो विलास-लीला चलती है, उससे यही सिद्ध होता कि वे दोनों पति-पत्नी हैं।' तत्त्वतः जल और वीचि अभिन्न हैं। कवि-कल्पना के माध्यम से, रस की सृष्टि के लिये उनमें कोई भी सम्बन्ध आरोपित किया जा सकता है।

वंदना के अन्तिम वाक्य में "जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न" कहकर वात्सल्य-भाव के अनोखेपन की ओर इंगित किया गया है। गुण के द्वारा लोक-दृष्टि में व्यक्ति का सम्मान बढ़ता है। किन्तु वात्सल्यकी यह अनुपम प्रकृति है कि वह अयोग्यता और असमर्थता में ही वृद्धिंगत होता है। एक नन्हें बालक के प्रति माता-पिता का जितना स्नेह होता है, सद्गुण-सम्पन्न बड़े बालक पर उतना नहीं होता। जगज्जननी श्रीसीता और करुणामय श्रीरामभद्रका वात्सल्य प्राप्त करने के लिए गुणाभिमान के स्थान पर, स्वयं में नन्हें बालक-जैसी असमर्थता का भान होना चाहिए। ऐसी अनुभूति जिनके अन्तःकरण में विद्यमान है, उन्हें ही ईश्वर की कृपा और वात्सल्य का वास्तविक रस प्राप्त होता है। श्रीतुलसी का जीवन दैन्य से भरा हुआ था। प्रेम का प्यासा उनका मन किसी से स्नेह पाने के लिए व्याकुल रहा। पर दीन हीन से कौन स्नेह करता ? किन्तु उन्होंने दीनों से प्रेम करने वालों का पता लगा ही लिया। प्रभु और किशोरीजी का वात्सलय पाकर उनकी दीनता भी सार्थक हो गई।

श्री राधा अष्टमी पर श्री महाराज जी का सन्देश ।

श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्राणप्यारी नित्य-निकुँजेश्वरी रासेश्वरी श्रीराधारानी के प्राकट्य-महोत्सव पर श्रीअवधवासियों का हर्षोल्लास स्वाभाविक है क्योंकि श्रीराधारानी श्रीरघुवंश की कन्या हैं। श्रीवृन्दावनवासी पूज्यपाद रसिकशिरोमणि बाबा श्री प्रियाशरणजी ने एकबार श्री बरसाने में सत्संग के अवसर पर मुझसे कहा कि श्रीदशरथजी महाराज के लघुभ्राता श्री नवरथजी थे, उन्हीं के वंशज श्रीवृषभानुजी थे। श्रीशत्रुघ्नकुमार ने लवणासुरका वधकर मथुरा बसाई तथा यहाँका राज्य श्रीनवरथ जी के पुत्रको दिया उन्होंने बादमें बरसाने में अपना निवास स्थान बनाया अतः श्री वृषभानु नन्दिनी श्रीराधारानी रघुवंशकी कन्या हैं यदुवंश की नहीं हैं। श्री बाबाजी महाराज इस समय केवल श्रीवृन्दावन धाम में ही नहीं किन्तु भारत में सर्व श्रेष्ठ सन्त हैं। उन्होंने विस्तार से मुझको इस कथा को सुनाई थी।

समस्त शास्त्रों में, सन्तों की रचनाओं में सुस्पष्ट वर्णन है कि श्रीश्यामसुन्दर की प्राप्ति के लिये श्रीराधारानी के श्रीचरणरजको उपासना परमावश्यक है। श्रीराधा सुधानिधिकार कहते है कि—

'राधादास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्दसङ्गाशया।
सोऽयं पूर्ण सुधारुचेः परिचयं राकां विना काङ्क्षति'

अर्थात् श्रीराधारानी के दास्यभाव के विना जो गोविन्द समागमकी आशा रखते हैं वे पूर्णिमा के विना पूर्ण चन्द्रका दर्शन करना चाहते हैं। वास्तव में श्रीप्रियापादारविन्दानुरागी के लिये भोग मोक्ष सभी त्याज्य हैं—'अलं विषय वार्तया नरककोटि बीभत्सया, वृथा श्रुतिकथाश्रमो बत बिभेमि कैवल्यतः। परेशभजनोन्मदाः यदि शुकादयः किं ततः,
परन्तु मम राधिका पदरसे मनो मज्जतु।

अर्थात् कोटि-कोटि नरकोंमें पहुँचानेवाली विषयकथा बन्द करो। अरे? कैवल्य मोक्षसे तो मुझे भयलगता है। यदि श्रीशुकदेव आदि महाभागण परमेश्वर के भजन में ही उन्मत्त रहते हैं तो उससे मुझे क्या प्रयोजन? मेरा मनतो श्रीराधिका चरणारविन्द के रसमें ही सदा निमग्न रहें।

गौराङ्गे म्रदिमा स्मिते मधुरिमा नेत्राञ्चले द्राघिमा
वक्षोजे गरिमा तथैव तनिमा मध्ये गतौ मन्दिमा
श्रोण्याञ्च प्रथिमा भ्रुवोःकुटिलिमा बिम्बाधरेशोणिमा
श्रीराधे हृदि ते रसेन जडिमा ध्यानेऽस्तु मे गोचरः॥

हे श्रीराधे? आपके गौर श्रीअङ्गमें मृदुता, मन्दहासमें मधुरता, नेत्रप्रान्तमें विशालता, वक्षोजों में गुरुता, मध्यभागमें कृशता, गतिमें मन्दता, नितम्बमें पृथुता, भृकुटियों में कुटिलता, अधरोंमें अरुणता तथा रसके कारण हृदय में जड़ता, ध्यान कालमें मेरे अनुभवका विषय हो। महापुरुष कहते हैं कि श्रीराधारानी के प्रत्येक अंग में माधुर्य का सागर उमड़ रहा है अतः मेरा ध्यान इन्हीं अंगोंका होता रहे। वास्तवमें श्रीप्रियारसके रसिकमहापुरुष लौकिक वैदिक सभी बन्धनोंसे मुक्त रहते हैं, कभी-कभी वे प्रियारसमें ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि भागवतधर्म के आवश्यक नियम तिलक कण्ठी आदि धारण करना भी भूल जाते हैं—

लिखन्ति भुजमूलयोर्न खलु शङ्खचक्रादिकं
विचित्र हरिमन्दिरं न रचयन्तिभाल स्थले।
लसत्तुलसिका मालिकां दधति कण्ठपीठे न वा
गुरोर्भजन विक्रमात्क इहते महाबुद्धयः॥

जो दोनों भुजमूलों में शंख चक्र आदि भगवान्के दिव्य आयुधों का धारण नहीं करते, मस्तक पर श्रीहरिमन्दिरके आकारके समान तिलककी रचना नहीं करते, कण्ठ भागमें श्री तुलसीकी माला धारण नहीं करते, अपने गौरवपूर्ण रसमय भजनानन्द में निमग्न में रहने के कारण जो कुछभी नहीं करपाते ऐसे महाबुद्धिजन यहां कौन हैं? अर्थात् ऐसे महापुरुष बिरले होते हैं।

श्रीराधा अष्टमी के अवसर पर हम श्रीराधारानी के श्रीचरणोंमें अपनी प्रणति सुमनाञ्जलि अर्पण करते हुए उनके मंगलकी कामना करते हैं साथही सभी प्रेमी भक्तोंका उनके चरणारविन्द की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। श्रीराधारानी के दिव्योन्मादका एक कण भी यदि जीवन में मिल जाय तो जीवन धन्य हो जाय यही सन्देश है।

पञ्जीकृत सं० एफ० डी० १०

"श्रीसीताराम गुण ग्राम विशेपाङ्क"

श्रीसीतारामजी की कृपा से अवध सन्देश के अठारहवें वर्ष का विशेपाङ्क "श्रीसीताराम गुण-ग्राम अङ्क" होगा। पाठकों से निवेदन है कि श्री-सीताराम जी के अनन्त कल्याण गुणगणों में से किन्हीं गुणों पर लेख लिखकर अक्टूबर मास के अन्त तक भेजने की कृपा करें।

प्रभुके ज्ञान शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, स्थैर्य, धैर्य, चातुर्य, मार्दव, आर्जव, कारुण्य, सौशील्य, वात्सल्य, सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, आदि दिव्य कल्याण गुणों पर लेख आमंत्रित हैं।

—व्यवस्थापक

* श्रीमहाराज जी का कार्य--क्रम *

१३ अक्तूबर से १७ तक जयपुर।

कलकत्ते का कार्यक्रम स्थगित हो गया है अतः श्रीमहाराजजी कलकत्ता नहीं जायँगे।

* अक्टूबर माह के व्रतोत्सव *

आश्विन कृष्ण एकादशी—शनिवार १२ अक्टूबर

" शुक्ल एकादशी—रविवार २७ "

" " १ नवरात्रारम्भ बुधवार १६ "

" " १० विजयादशमी शुक्र० २५ "

" " १५ शरदपूर्णिमा बुधवार ३० "



ग्राहक संख्या

नाम ग्राहक श्री

ग्राम

पत्रालय

जिला



रामप्रियाशरण श्रीवैष्णव

व्यवस्थापक—

अवध-सन्देश-कार्यालय

लक्ष्मणकिला

श्रीअयोध्याजी

जि०—फैजाबाद

फोन नं० ४४